International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(4): 261-266

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(4): 261-266
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 19-06-2022
Accepted: 26-07-2022

**सुजीत कुमार**
पीएचडी शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

**Corresponding Author:**
**सुजीत कुमार**
पीएचडी शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

# अचिन्त्यभेदाभेद एवं अन्य वाद का तुलनात्मक अध्ययन

## सुजीत कुमार

### प्रस्तावना

### अचिन्त्यभेदाभेदवाद का स्वरूप

अचिन्त्यभेदाभेदवाद के अनुसार परब्रह्म श्री कृष्ण और जीव जगत् में अचिन्त्य भेदाभेद सम्बन्ध है। परब्रह्म श्रीकृष्ण की शक्ति के रूप में जीव जगत् आदि की प्रतिष्ठा है। इनमें परस्पर भेद और अभेद दोनों हैं। जीवगोस्वामीपाद कहते हैं कि भगवान् में उनकी स्वरूपादि शक्तियों से अभिन्न रूप से चिन्तन करना अशक्य है अतः वह भिन्न प्रतीत होता है। उनसे भिन्न रूप में चिन्तन करना अशक्य है, फलत: वह अभिन्न प्रतीत होता है। इस प्रकार शक्तिमान् (भगवान्) और शक्ति (स्वरूपादि) में भेद और अभेद दोनों सिद्ध होते हैं।[1] ये दोनों भेद और अभेद अचिन्त्य शक्ति के कारण अचिन्त्य हैं।[2] शक्ति के अचिन्त्यत्व से तात्पर्य है- असंभव को संभव करना' 'दुर्घटघटकत्वं हि अचिन्त्यत्वं ।"[3]" अचिन्त्य वह है, जिसे अपरिहार्यतः तथ्यों की व्याख्या के हेतु स्वीकार करना पड़ता है, परन्तु जो तर्क की संवीक्षा सहन नहीं कर सकता है। अचिन्त्य वह है, जो भिन्न है अथवा अभिन्न है इस प्रकार विकल्प रूप में जिसका चिन्तन अशक्य है, जो केवल अर्थापत्ति प्रमाणगोचर है।[4] इस प्रकार अचिन्त्य के कारण शक्ति असम्भावयित्री और दुस्तर्का है। इस अचिन्त्य शक्ति से युक्त होने के कारण भेद और अभेद दोनों अचिन्त्य हैं। अतः यह भेदाभेद अचिन्त्यभेदाभेदवाद कहलाता है।

अचिन्त्यभेदाभेद का सिद्धान्त व्यापक सिद्धान्त है। यह शक्तिमान् और शक्ति के सम्बन्ध की अद्भुत व्याख्या करता है। शक्ति, कार्योन्मुख शक्तिमान् का स्वरूप है, अन्यथा स्वत: स्वरूप का शक्तित्व नहीं है।[5]" अतः शक्ति- शक्तिमान् से पृथक नहीं है। वह अविच्छेद्य भाव से उसमें नित्य वर्तमान है। दोनों अभिन्न हैं। जैसे अग्नि में दाहिकाशक्ति और कस्तूरी में गन्ध कार्योन्मुख अग्नि ही दाहिका शक्ति है और कार्योन्मुख कस्तूरी ही गन्ध है। शक्ति विशेषण है और शक्तिमान् विशेष्य है। विशेषण और विशेष्य मिलकर ही किसी वस्तु की सत्ता निर्धारित करते हैं। दोनों में अभिन्नता है।

किन्तु कभी - कभी शक्ति का अनुभव न होने पर भी शक्तिमान् का अनुभव होता है जैसे- मन्त्रादि के प्रभाव से किसी किसी वस्तु की शक्तिमात्र स्तम्भित होती देखी जाती है, किन्तु वस्तु का अस्तित्व रहता है।[6] जैसे मन्त्र महौषधि के प्रभाव से अग्नि की दाहिका शक्ति स्तम्भित हो जाती है। विशेष औषधि लगा लेने से अग्नि में हाथ डालने पर भी हाथ नहीं जलता, किन्तु ऐसा होने पर भी अग्नि रहती है। इस प्रकार शक्ति का अनुभव न होने पर भी शक्तिमान् का अनुभव होता है अतः शक्ति से शक्तिमान् भिन्न भी है। शक्तिमान् से शक्ति को पृथक् नाम से अभिहित करना सङ्गत है। शक्तिमान् में उसकी स्वरूपादि शक्तियों से अभिन्न रूप से चिन्तन करना अशक्य है और वह भिन्न प्रतीत होता है। और उनसे भिन्न रूप से चिन्तन करना भी अशक्य है। फलतः वह अभिन्न प्रतीत होता है। इस प्रकार शक्तिमान् तथा शक्ति से भेद और अभेद - दोनों सिद्ध होते हैं।[7] ये दोनों ही अचिन्त्य शक्ति से युक्त होने के कारण अचिन्त्य हैं।[8]

यहाँ एक शंका होती है कि यह अचिन्त्य शक्ति किसकी है? ब्रह्म की अथवा वस्तुमात्र की क्योंकि जीवगोस्वामीपाद ने यह अचिन्त्य शक्ति ब्रह्म की है अथवा वस्तुमान की इस विषय में कुछ नहीं कहा? इस शंका का समाधान यह प्रतीत होता है कि जीवगोस्वामीपाद अचिन्त्यभेदाभेद सिद्धान्त को व्यापक रूप प्रदान करना चाहते हैं। अतः उन्होंने शक्तिमान् के विषय में कुछ नहीं कहा। यदि वे ब्रह्म का अचिन्त्यशक्तिमयत्व कहते तो यह अचिन्त्यभेदाभेद का सम्बन्ध ब्रह्म और उसकी शक्ति के मध्य ही सीमित रहता, किन्तु उनके मत में यह सम्बन्ध वस्तुमात्र और उसकी शक्ति के मध्य भी है। वे वस्तुमात्र की भी अचिन्त्यशक्ति को स्वीकार करते हैं। अतः यहाँ यह मानना समीचीन है कि वस्तुमात्र और उसकी शक्ति के मध्य अचिन्त्यभेदाभेद सम्बन्ध में अचिन्त्यशक्ति वस्तु की है। ब्रह्म और उसकी शक्ति के मध्य अचिन्त्यभेदाभेदसम्बन्ध में अचिन्त्यशक्ति ब्रह्म की है। किन्तु वस्तुमात्र की अचिन्त्य शक्ति का अभिप्राय आनुषंगिक रूप में है। इसका मुख्य अभिप्राय ब्रह्म की अचिन्त्यशक्ति से है। ऐसा मानने के दो विशेषकारण हैं।

(1) महाप्रभु ने अचिन्त्यभेदाभेद के सिद्धान्त का उल्लेख किया है, ब्रह्म और जीव-जगत् के बीच सम्बन्ध के संदर्भ में, न कि वस्तुमात्र में शक्ति और शक्तिमान् के बीच सम्बन्ध के संदर्भ में इस सम्बन्ध में उन्होंने भगवान् की ही अचिन्त्य शक्ति का उल्लेख किया है, न कि भेदाभेदयुक्त प्राकृतिक वस्तुओं की अचिन्त्य शक्ति का उल्लेख किया है।'[9]

जगत् रूप में परिणती प्राप्त करके भी ईश्वर अपने स्वरूप में अविकृत रहता है, इस बात को सिद्ध करने के लिए उन्होंने प्राकृत जगत् का एक दृष्टान्त देते हुए कहा है कि जिस प्रकार चिन्तामणि से नाना प्रकार के रत्न प्रकट होते हैं, फिर भी उसका अपना स्वरूप विकृत नहीं होता, उसी प्रकार ईश्वर अपनी शक्ति से जगत् को प्रकट करके भी अविकृत रहता है और इसी सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि जब प्राकृत वस्तु में इस प्रकार की अचिन्त्य शक्ति देखने में आती है तब ईश्वर में अचिन्त्य शक्ति हो, इसमें विस्मय की क्या बात है ? [10]

इससे स्पष्ट है कि श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ने ईश्वर की अचिन्त्य शक्ति को समझाने के लिये ही प्राकृत वस्तुओं की अचिन्त्य - शक्ति का दृष्टान्त रूप में उल्लेख किया है। मुख्य रूप से उनका अभिप्राय वस्तुमात्र की अचिन्त्य शक्ति से नहीं ईश्वर की अचिन्त्य शक्ति से ही है।

जीवगोस्वामीपाद ने भी ब्रह्म और जीव जगत् के बीच सम्बन्ध के विषय में भास्कर, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य आदि के मतों का उल्लेख करते हुए कहा है कि "स्वमते तु अचिन्त्यभेदाभेदावेव अचिन्त्यशक्तिमयत्वादिति ।"[11] इससे स्पष्ट है कि उन्होंने अचिन्त्य भेदाभेद सिद्धान्त का उल्लेख ब्रह्म और जीव जगत् के सम्बन्ध को लेकर ही किया है और अचिन्त्य शब्द से उनका तात्पर्य ब्रह्म की अचिन्त्य शक्ति से ही है।

(2) यदि मान लिया जाय कि 'अचिन्त्य' शब्द से तात्पर्य वस्तुमात्र की अचिन्त्य शक्ति से है ब्रह्म की अचिन्त्य शक्ति से नहीं, तो ब्रह्म के स्वरूप से सम्बन्धित कई महत्त्वपूर्ण समस्याओं का हल न हो सकेगा। साधारण वस्तुओं की अचिन्त्य शक्ति, शक्ति और शक्तिमान् में भेद और अभेद की युगपत् स्थिति का ही कारण होती है। वस्तु को शक्ति के परिणाम से अविकृत रखने की सामर्थ्य उसमें नहीं होती। वस्तु और उसकी शक्ति में स्वाभाविक अभेद के कारण शक्ति

के दोषों से वस्तु दूषित हुए बिना नहीं रहती। मनुष्य अच्छे या बुरे कर्म करें और उसके कर्मों के गुण या दोष उसकी कर्म करने की शक्ति तक ही सीमित रहें, उसे स्पर्श न करें, यह संभव नहीं है। परब्रह्म की अचिन्त्य शक्ति उसे अपनी शक्ति के परिणामों और उनके दोषों के कारण विकृत नहीं होने देती है। इससे स्पष्ट है कि परब्रहा की अचिन्त्यभेदाभेद की शक्ति वस्तुमात्र की अचिन्त्यभेदाभेद की शक्ति से सर्वथा भिन्न है और श्रीकृष्णचौतन्यमहाप्रभु का अचिन्त्यभेदाभेद का सिद्धान्त परब्रह्म की अचिन्त्य शक्ति लेकर ही है, वस्तुमात्र की अचिन्त्य शक्ति को लेकर नहीं।[12] इस प्रकार अचिन्त्यभेदाभेदवाद में भेदाभेद अचिन्त्य शक्ति से युक्त होने के कारण अचिन्त्य है और इसका मुख्य अभिप्राय ब्रह्म की अचिन्त्य शक्ति से है। अचिन्त्यभेदाभेदसिद्धान्त का अचिन्त्य अद्वैत मत के माया सिद्धान्त के 'अनिर्वचनीय से भिन्न है। क्योंकि माया सिद्धान्त का अनिर्वचनीय निषेधात्मक है वह माया में सत् और असत् दोनों विरोधी गुणों का निराकरण करता है। किन्तु अचिन्त्यभेदाभेद सिद्धान्त विधेयात्मक है। वह शक्ति और शक्तिमान् के बीच भेद और अभेद दोनों विरोधी गुणों को समाविष्ट करता है।

## अन्यभेदाभेदवाद और अचिन्त्यभेदाभेदवाद - तुलनात्मक अध्ययन

### 1. अद्वैतवाद और अचिन्त्यभेदाभेदवाद

अद्वैतवाद के प्रतिष्ठापक आचार्य शंकर के मतानुसार ब्रह्म एकमात्र अद्वैततत्त्व है। अन्य सभी पदार्थ असत् हैं। जगत् ब्रह्म का विवर्त है। शुक्ति में रजत की भ्रान्त प्रतीति के समान मिथ्या है। जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। ब्रह्म ही अविद्योपाधि के कारण जीव है। जब तक बुद्धि रूप उपाधि के साथ जीव का सम्बन्ध रहता है, तभी तक जीव का जीवत्व और संसारित्व है।[13] अविद्या निवृत्ति होने पर जीव अपने स्वरूप को प्राप्त होता है और जीवों का वास्तविक स्वरूप ब्रह्म है"[14] अतः ब्रह्म और जीव में भेद कल्पित है, उपाधि के कारण है। वस्तुतः दोनों में अभेद है।

इस प्रकार अद्वैतवाद पूर्णतया अभेद को ही स्वीकार करता है। उसमें भेद के लिए कोई स्थान नहीं है किन्तु अचिन्त्यभेदाभेदवाद भेद और अभेद दोनों को समान रूप से स्वीकार करता है।

### 2. विशिष्टाद्वैतवाद और अचिन्त्यभेदाभेदवाद

विशिष्टाद्वैतवाद आचार्य रामानुज का मत है जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट हैं कि यह संविशिष्ट अद्वैत को स्वीकार करता है- (विशिष्टस्य अद्वैतं ) । इस मत के अनुसार एकमात्र ब्रह्म परमतत्त्व है, जो कि चित् (जीव) और अचित् (जगत्) दोनों से विशिष्ट है।[15] ब्रह्म के विशेषण स्वरुप होने से जीव और जगत् हैं। ब्रह्म, भी सत्य हैं अतः आधारभूत तत्त्व के रूप में ब्रह्म जीव और जगत् ये तीन तत्व हैं। किन्तु इनका स्तर समान नहीं हैं, अपितु भिन्न-भिन्न है। इनमें चरमसत्ता एकमात्र ब्रह्म है, जो कि स्वाधीन है, शेष दोनों जीव जगत् ब्रह्माधीन और नियंत्रित हैं।

ब्रह्म और जीव-जगत में क्या सम्बन्ध है? यह समझाने के लिए रामानुजाचार्य शरीर - शरीरी भाव की सहायता लेते हैं। शरीर शरीरी भाव [16] के अनुसार ब्रह्म आत्मरूप है और जीव जगत् उसके शरीर हैं यहाँ शरीर से तात्पर्य मानवीय देह से नहीं है अपितु उस द्रव्य से है, जिसे चेतन आत्मा अपने प्रयोजन हेतु धारण करती है, नियमन करती है, कार्य में प्रवृत्त करती है और जो पूर्णतया उस आत्मा के अधीनस्थ है। इस दृष्टि से समस्त विश्व ब्रह्म द्वारा नियन्त्रित और ब्रह्म के अधीनस्थ रहता है। ब्रह्म के शरीरभूत होने पर भी सृष्टि की अवस्था में जीव के दोषों और जगत् के विकारों से ब्रह्म प्रभावित नहीं होता है जैसे शारीरिक विकारों अथवा दोषों से आत्मा प्रभावित नहीं होती है अतः जीव जगत् और ब्रह्म में शरीर शरीरी सम्बन्ध है। इस विशिष्ट सम्बन्ध को रामानुज ने अपृथक् सिद्धि सम्बन्ध कहा है। इसके अनुसार जीव जगत् पूर्णतया ब्रह्माश्रित हैं, ब्रह्म उसका अन्तर्यामी है। अतः उससे अभिन्न है। किन्तु भिन्न भी है, क्योंकि ब्रह्म निर्दोष है, जीव-जगत् दोष और विकारों से युक्त हैं। ब्रह्म पूर्ण और विभु है, किन्तु जीव अपूर्ण एवं अणु है। अतः ब्रह्म और जीव-जगत् में भेदाभेद सम्बन्ध है। -

इस प्रकार विशिष्टाद्वैतवाद भेदाभेदवाद है। यह सिद्धान्त ब्रह्म और जीव जगत् के सम्बन्ध की व्याख्या द्रव्य-गुण-भाव और शरीर- शरीरी भाव के आधार पर करता है। किन्तु

अचिन्त्यभेदाभेदवाद शक्ति - शक्तिमान् सम्बन्ध के आधार पर जीव जगत् और ब्रह्म के सम्बन्धों की व्याख्या करता है। विशिष्टाद्वैतवाद भेद की -जगत् अपेक्षा अभेद पर अधिक बल देता है। किन्तु अचिन्त्यभेदाभेदवाद भेद और अभेद दोनों को समानरूप से स्वीकार करता है।

### 3. औपाधिक भेदाभेदवाद और अचिन्त्यभेदाभेदवाद

आचार्य भास्कर औपाधिक भेदाभेद के आधार पर जीव-ब्रह्म के सम्बन्धों की व्याख्या करते हैं। उनके मत में जीव और ब्रह्म में अभेद है। जीव का वास्तविक रूप ब्राह्म रूप है। जीवत्व औपाधिक है।[17] जीवत्व रूप में ही उसकी ब्रह्म से भिन्नता है। अतः उपाधि-बन्धन की अवस्था में ही जीव का ब्रह्म से भेद है। मुक्ति की अवस्था में दोनों में अभेद है। इस प्रकार ब्रह्म और जीव में परस्पर भेद - अभेद है। अभेद स्वाभाविक, आन्तरिक सत्य और शाश्वत । किन्तु भेद स्वाभाविक आन्तरिक और शाश्वत नहीं हैं। केवलमात्र औपाधिक है।

औपाधिक भेदाभेदवाद अचिन्त्यभेदाभेदवाद से भिन्न है। क्योंकि औपाधिक भेदाभेदवाद के अनुसार जीव और ब्रह्म में भेद जीव को बन्धन की अवस्था में ही है, मुक्ति की अवस्था नहीं है। मुक्ति की अवस्था में दोनों में अभेद है।[18] किन्तु अचिन्त्यभेदाभेदवाद जीव-ब्रह्म में भेद और अभेद दोनों को मुक्ति की अवस्था में भी उसी प्रकार मानता है, जिस प्रकार बन्धन की अवस्था में स्वीकार करता है औपाधिक भेदाभेदवाद भेद की अपेक्षा अभेद पर अधिक बल देता है। किन्तु अचिन्त्य भेदाभेदवाद भेद और अभेद को समानरूप से मानता है। औपाधिक भेदाभेदवाद भेद को उपाधिकृत मानता है। किन्तु अचिन्त्यभेदाभेदवाद किसी उपाधि को स्वीकार नहीं करता है। जीवागोस्वामीपाद औपाधिक भेदाभेदवाद का खण्डन करते हुए कहते हैं कि यदि ब्रह्म में उपाधि सम्बन्ध स्वीकार कर जीव का जीवत्व मानेंगे तो जीव के दोषों से ब्रह्म भी दूषित होगा और ब्रह्म के स्वरूप में, जो निर्दोष, निर्विकार और अशेष कल्याणगुणात्मक है, विरोध उत्पन्न होता है।[19]

### 4. स्वाभाविकभेवाभेववाद और अचिन्त्यभेदाभेदवाद:

निम्बार्काचार्य जीव और ब्रह्म में स्वाभाविक भेदाभेद मानते हैं। उनके मत में भेद औपाधिक नही, स्वाभाविक है। जीव और जगत् की ब्रह्म में स्वाभाविक स्थिति है। ब्रह्म कारण है, जीव जगत् कार्य है। ब्रहा अंशी है और जीव-जगत् अंश है। कारण और कार्य परस्पर भिन्न और अभिन्न हैं। अंश अशी से भिन्न और अभिन्न है।[20] जैसे सूर्य और उसकी किरणें परस्पर भिन्न और अभिन्न हैं। उसी प्रकार ब्रह्म और जीव जगत् अपने स्वभाव से ही परस्पर भिन्न और अभिन्न हैं। यह भिन्नताभिन्नता न केवल जीव की बद्धावस्था में रहती है, अपितु मुक्ति की अवस्था में भी है।[21]

स्वाभाविक भेदाभेदवाद अचिन्त्यभेदाभेदवाद के समान भेद को वास्तविक मानता है, औपाधिक नहीं मानता है। दोनों सिद्धान्त भेद और अभेद को समान रूप से स्थान देते हैं। किन्तु दोनों में वैधिन्य है क्योंकि स्वाभाविक भेदाभेदवाद कार्य-कारण सम्बन्ध और अंश अंशी सम्बन्ध के आधार पर जीव-ब्रह्म में भेदाभेद तर्क द्वारा सिद्ध करता है। परन्तु अचिन्त्यभेदाभेदवाद शक्ति - शक्तिमान् सम्बन्ध के आधार पर जीव-ब्रह्म में भेदाभेद की प्रतिष्ठा करता है। जीवगोस्वामीपाद निम्बार्काचार्य के कार्यकारण सम्बन्ध के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहते हैं कि कार्य और कारण दोनों भिन्न वस्तुएँ है। कारणत्व में कार्यत्व नहीं होता है और कार्यत्व में कारणत्व नहीं होता है मृत्तिका से घट बनाते है, किन्तु मृत्तिका घट नहीं होती । आकार - विशिष्ट मृत्तिका ही घट होती है। कार्य-कारण का एकत्व है. घट के समान एक विशिष्ट कार्य को लेकर, न कि उन सभी वस्तुओं को लेकर जो मृत्तिका का कार्य हैं। यदि ऐसा होता, तो एक ही कारण के विभिन्न कार्यों में कोई भेद न रहता। कारण रूप मृत्तिका मिट्टी के विभिन्न प्रकार के बर्तनों की समष्टि से अभिन्न नहीं। यदि ऐसा होता तो विभिन्न प्रकार के मिट्टी के बर्तनों में कोई भेद न रहता।[22] कारण और कार्यपरस्पर भिन्न हैं। इस कार्यकारणसम्बन्ध के आधार पर भेदाभेद को सिद्ध नहीं किया जा सकता है। स्वाभाविक भेदाभेद के विरुद्ध दूसरा महत्त्वपूर्ण आक्षेप यह है कि ब्रह्म और जीव

जगत् में स्वाभाविक अभेद के कारण जीव और जगत् के दोष भी स्वाभाविक रूप से ब्रह्म को आरोपित होते हैं और ब्रह्म के स्वरूप में जो स्वभावतः निर्विकार और अनन्तगुण सम्पन्न है, विरोध उत्पन्न होता है।

इसी प्रकार जीव और ब्रह्म में स्वाभाविक अभेद के कारण जीव में ब्रह्म की सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमता का आरोप होता है जो जीव के वास्तविक स्वरूप के विपरीत है।[23]

## 5. द्वैतवाद और अचिन्त्यभेदाभेदवाद

द्वैतवाद मध्वाचार्य का सिद्धान्त है। इसके अनुसार ब्रह्म और जीव जगत् में यथार्थ भेद है। यह भेद इनके नाम, रूप, गुण आदि में है भेद के सामान्यतया तीन प्रकार हैं- (1) सजातीय (2) विजातीय और (3) स्वगत। इनमें से तृतीय स्वगत भेद को मध्वाचार्य स्वीकार नहीं करते हैं। सजातीय और विजातीय- इन दो भेदों के आधार पर ब्रह्म जीव और जगत् इन तीनों में भेद का निरूपण करते हुए भेद के पाँच प्रकार करते हैं जीव, ईश्वर, जगत्, जीव, जगत्।

इन पाँच भेदों को समग्रतः प्रपंच कहा है- 'प्रकृष्ट: पंचविधो भेदः प्रपंच: [24]" ब्रह्म और जीव में यथार्थ भेद मानते हुए उनमें सम्बन्ध की व्याख्या । विम्ब प्रतिबिम्बभाव के आधार पर की है।

इस प्रकार द्वैतवाद जीव और ब्रह्म में पूर्णतया भेद मानता है अतः सिद्धान्त अचिन्त्यभेदाभेदवाद से पूर्णतया भिन्न है। क्योंकि अचिन्त्यभेदाभेदवाद भेद और अभेद दोनों को समान रूप से स्वीकार करता है। इसके अनुसार भेद और अभेद दोनों सत्य और शाश्वत हैं। किन्तु द्वैतवाद में अभेद के लिए कोई स्थान नहीं है। भेद ही सत्य और शाश्वत है। द्वैतवाद की आलोचना करते हुए जीवगोस्वामी पाद कहते हैं कि यदि जीव और ब्रह्म में अत्यन्त भेद को मानेंगे, तो उनमें किसी भी प्रकार से ऐक्य असंभव होगा और ब्रह्मात्मभावोपदेश संभव नहीं होंगे। अतः सम्पूर्ण वेदान्त को ही छोड़ना पड़ेगा।[25] इसलिए द्वैतवाद दोषपूर्णमत है।

## 6. शुद्धाद्वैतवाद और अचिन्त्यभेदाभेदवाद:

वल्लभाचार्य का मत शुद्धाद्वैतवाद है। शुद्धाद्वैत की व्याख्या दो प्रकार से की जाती है।[26] प्रथम इसमें कर्मधारय समास मानकर इसका अर्थ किया जाता है "शुद्धम् अद्वैतम्" अर्थात् माया रहित एक अद्वितीय सत्स्वरूप ब्रह्म पुनः षष्ठी तत्पुरुष समास मानकर इसका अर्थ किया जाता है "शुद्धयोः अद्वैतम्" अर्थात् दो शुद्ध प्रमेयों का अद्वैत शुद्ध से तात्पर्य माया सम्बन्ध से रहित होना है।[27] माया सम्बन्ध से रहित ब्रह्म अद्वैततत्त्व है। वह सच्चिदानन्दस्वरूप है। उसका चिदश जीव और सदंश जगत् है । इस प्रकार जीव और जगत् ब्रह्म का अंश हैं।[28] अंश होने के कारण जीवजगत् ब्रह्म से एकरूप हैं। वे आविर्भाव एवं तिरोभाव के रूप के उसके व्यापार के द्वारा जीव जगत् के रूप में प्रतीत होते हैं जीव-ब्रह्म का परस्पर सम्बन्ध उसी प्रकार है, जिस प्रकार अग्नि एवं स्फुलिंग में है जैसे स्फुलिंग अग्नि से अभिन्न है, उसी प्रकार जीव ब्रह्म से अभिन्न है। अविद्या के कारण जीव संसारी है। किन्तु विद्या के कारण अविद्या से मुक्त होकर जीवन्मुक्त हो जाता है। जीव की मुक्ति उसके तिरोभूत आनन्दांश की प्राप्ति है, ब्रह्म से एकरूपता नहीं है। ब्रह्म से अभिन्नता तो उसकी पहले से ही है। इस प्रकार ब्रह्म को पूर्ण तथा जीव को अंश मानते हुए भी वल्लभाचार्य ने दोनों को अपृथक् माना है।

इस प्रकार शुद्धाद्वैतवाद अचिन्त्यभेदाभेदवाद से पूर्णतया भिन्न सिद्धान्त है। क्योंकि शुद्धाद्वैतवाद पूर्णतया अभेद को मानता है वहाँ भेद के लिए कोई स्थान नहीं है। किन्तु अचिन्त्य भेदाभेदवाद भेद और अभेद दोनों को समान रूप से स्वीकार करता है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट है कि अचिन्त्यभेदाभेदवाद अन्य भेदाभेदसिद्धान्तों से भिन्न सुव्यवस्थित एवं सामंजस्यपूर्ण सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त " अचिन्त्य की तर्कातीत धारणा को प्रस्तुत कर भेद और अभेद की युगपत् स्थिति बनाने में और परमसत्ता को अधिकृत एवं निर्लिप्त रखने में समर्थ हो जाता है। अतः अचिन्त्यभेदाभेदवाद के रूप में ब्रह्म और जीव जगत् के सम्बन्धों का युक्ति पूर्ण विवेचन, अपूर्व है।

## संदर्भ

1. सर्वसंवादिनी, पृ. 33, जीवगोस्वामी, सम्पादक कृष्णदास, मथुरा, संवत् 2022
2. उपर्युक्तवत्, पृ. 146

3. भगवत्सन्दर्भ, पृ. 66, जीवगोस्वामी, सम्पादक श्यामदास ब्रजगौरव प्रकाशन, वृन्दावन, सन्1990
4. सर्वसंवादिनी पू. 55
5. उपर्युक्तवत्, पृ. 55
6. सर्वसंवादिनी, पृ. 33
7. स्वरूपादभिन्नत्वेन चिन्तयितुमशक्यत्वाभेद भिन्नत्वेन चिन्तयितुमशक्यत्वाद-भेदश्च प्रतीयत इति शक्तिमतोर्भेदाभेदावेवाङ्गीकृती तौ च अचिन्त्य इति । उपरिवत्, पृ. 33
8. स्वमते त्वचिन्त्यभेदाभेदावेव अचिन्त्यशक्तिमयत्वादिति ।। उपरिवत्, पृ. 146
9. चौतन्यचरितामृत, 1/7/117 कृष्णदास कविराज, हरिनाम संकीर्तनमण्डल, वृन्दावन सन् 1965-65
10. चौतन्यचरितामृत, 1/7/120
11. सर्वसंवादिनी, पृ. 149
12. श्रीचैतन्यमहाप्रभु का दार्शनिक सिद्धान्त अचिन्त्यभेदाभेद, अवधबिहारी लाल कपूर, पृ. 202 203, परमार्थ प्रकाशन, वृन्दावन, संवत् 2038
13. शांकरभाष्य, 2/3/30, शंकराचार्य, भामतीटीका सहित भामती व्याख्याकार, स्वामी योगीन्द्रानन्द, चौखम्बा विद्याभवन, 1996
14. ब्रह्मसूत्र 1/4/3 शांकरभाष्य भामतीटीका
15. फण्डामेण्टल ऑफ विशिष्टावेदान्त, एस. एम. श्रीनिवासाचारी, पृ. 26 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2004
16. श्री भाष्य 1/1/1, 2/1/9, रामानुजाचार्य, सम्पादक, प्रो. एम.ए. लक्ष्मीताताचार्य, मेलुकोट, 1985
17. भास्करभाष्य, 2/3/18, भास्कराचार्य, सम्पादक- विध्येश्वरी प्रसाद, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1914
18. उपरिवत्, 1/4/20
19. सर्वसंवादिनी, पृ. 129
20. द फिलासफी ऑफ निम्बार्क, प्रो. मदनमोहन अग्रवाल, पृ. 96 आगरा, 1997
21. उपरिवत्, पृ. 98
22. सर्वसंवादिनी, पृ. 144-145
23. उपरिवत्, पृ. 33, 129
24. फिलासफी ऑफ श्री मध्वाचार्य, बी. एन. के. शर्मा, पृ. 93, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2002
25. सर्वसंवादिनी, पू. 33, 129
26. शुद्धाद्वैतमार्तण्ड, 27, गिरिधर, सम्पादक - सत्यनारायण मिश्र, वाराणसी, शकाब्द, 1988
27. उपरिवत् 28
28. अणुभाष्य, 2/3/43 वल्लभाचार्य, सम्पदक – मूलचन्द तुलसीराम, दिल्ली, 2005